पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति
प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

शब्द
से संवेदना तक...
लेखन से
परिवर्तन तक...

हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति

'समसामयिक प्रश्नों पर आपकी कलम'

(लेख प्रतियोगिता)

विचार...
चिंतन...
संवाद...
और
एक बेहतर
कल की ओर...

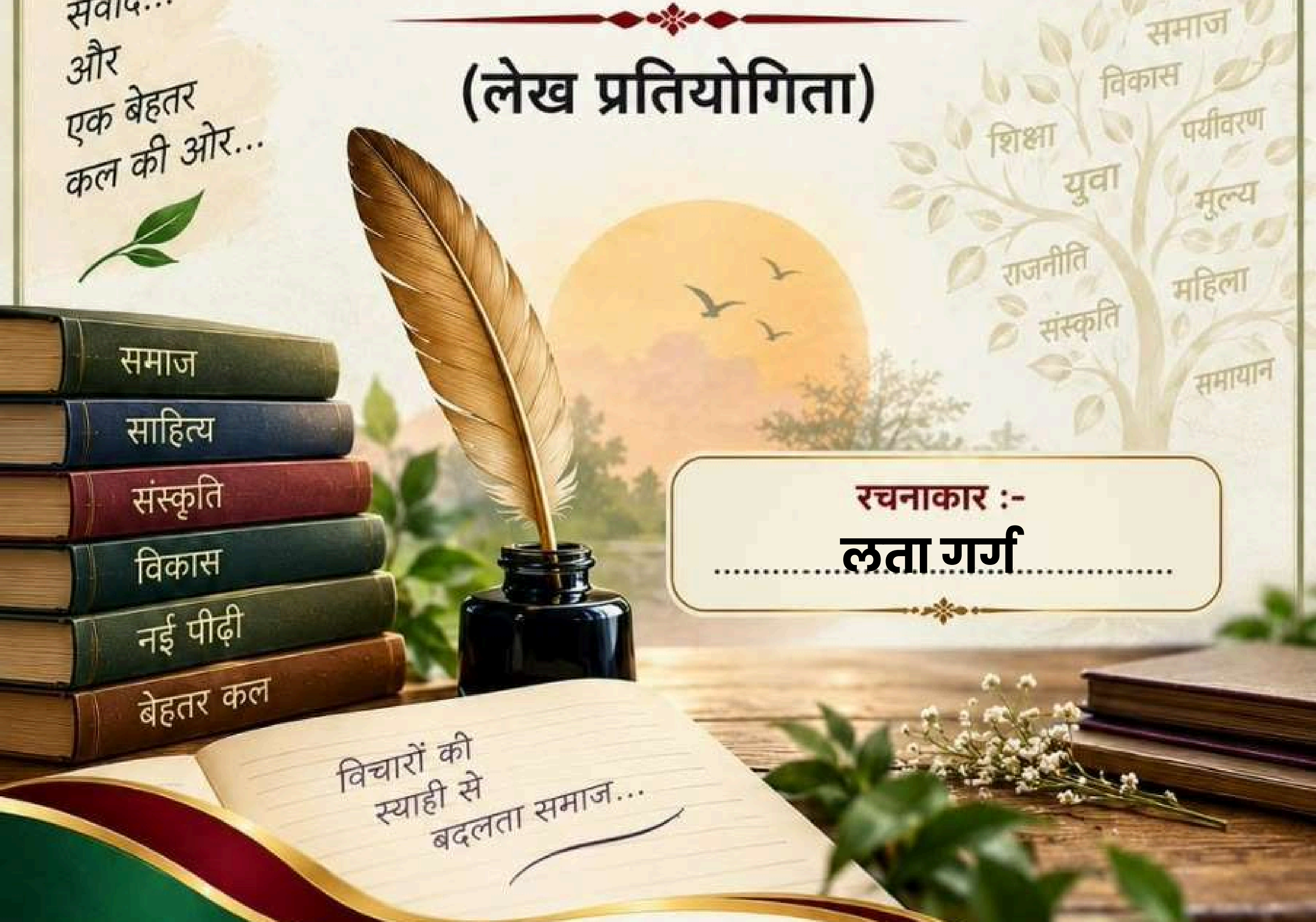

रचनाकार :-
लता गर्ग

आयोजक:-
अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति

प्रकाशन एवं बहुददेशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति

शब्द से संवेदन तक...
लेखन से परिवर्तन तक...

संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
तकनीकी संपादक : Webcoodee.com
मुख्य कार्यालय : 15 नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाधाट (म.प्र.) 481331

Antrashabdshaktiprakashan

संपर्क : 9009423393
ईमेल : antrashabdshakti@gmail.com
वेबसाइट : www.antrashabdshakti.com

वैधानिक सूचना

पुस्तक में प्रकाशित सभी रचनाएँ संबंधित रचनाकारों की मौलिक अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रत्येक रचना में व्यक्त विचार, कथ्य एवं अभिमत के लिए संबंधित रचनाकार स्वयं उतरदायी हैं। रचनाओं के चयन एवं प्रकाशन का उद्देश्य साहित्यिक अभिव्यक्ति को मंच प्रदान करना एवं हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करना हैं।

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति

www.antrashabdshakti.com

प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

लेख प्रतियोगिता

लेखक/लेखिका - **लता गर्ग**

आज की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या:

"आख़िर कैसी आज़ादी?"

आज की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या: “आख़िर कैसी आज़ादी?”

कुछ सवाल हैं मेरे!!

क्या कभी किसी को न्याय मिला है यहाँ? क्या किसी दोषी को कड़ी से कड़ी सजा मिली है कभी? उल्टा, हर दिन हैवानियत के नए तरीके सामने आ रहे हैं। खबरों के पन्ने खोलो तो हत्या, बलात्कार, अपहरण और महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा की खबरें सामान्य-सी लगने लगी हैं। सवाल यह नहीं है कि अपराध क्यों हो रहे हैं, सवाल यह है कि अपराध करने वालों के मन में कानून का डर क्यों नहीं है?

हम भारत के लोग अपनी माँ, बहन और बेटियों को सुरक्षित नहीं रख पा रहे और रामराज्य स्थापित करके विश्वगुरु बनने के सपने देख रहे हैं। कैसे बनेगा रामराज्य? ऐसे? जहाँ आए दिन हत्या, रेप और अपहरण की खबरें देखने को मिलती हैं। कितनी ही आवाजें तो बाहर आने से पहले ही दबा दी जाती हैं और कितनी ही आवाजें न्याय की चौखट तक पहुँचते-पहुँचते थक जाती हैं।

हम अखंड भारत के सपने देख रहे हैं, दुनिया को रास्ता दिखाने की बातें कर रहे हैं, विश्वगुरु बनने की बातें कर रहे हैं, लेकिन एक सवाल अपने आप से पूछना भूल जाते हैं कि जो भारत आज हमारे सामने है, उसकी न्याय व्यवस्था पर क्या हर नागरिक विश्वास कर सकता है?

जिस देश की बेटी अपने ही देश में सुरक्षित महसूस न करे,

उस देश की तरक्की के आँकड़े आखिर किस काम के? कब रुकेगा ये सब? क्या कभी किसी आरोपी को ऐसी कठोर और निश्चित सजा हुई है कि उसे देखकर दूसरे अपराधियों की रूह काँप जाए? कानून का डर अपराध होने के बाद नहीं, अपराध करने से पहले होना चाहिए। लेकिन जब अपराधी को यह भरोसा हो कि मामला वर्षों तक चलेगा, तारीख पर तारीख मिलेगी, गवाह टूट सकते हैं, सबूत कमजोर पड़ सकते हैं और किसी न किसी रास्ते से वह बाहर भी आ सकता है, तो फिर कानून का भय कहाँ से पैदा होगा?

आजादी का अर्थ केवल इतना नहीं है कि हम हर वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर तिरंगा फहराएँ, राष्ट्रगान गाएँ और देशभक्ति के गीत सुनें। आजादी का अर्थ यह भी है कि देश का हर नागरिक अपने घर से बाहर निकलते समय यह महसूस करे कि कानून उसके साथ खड़ा है। एक बेटी रात में घर लौटते समय डरे नहीं। एक बच्ची स्कूल जाते समय अपने माता-पिता को यह कहकर न जाए कि अगर देर हो जाए तो चिंता मत करना। एक महिला अपने कपड़ों, अपने समय या अपने रास्ते को लेकर अपराधबोध महसूस न करे। अगर डर के साये में जीना ही हमारी आजादी है, तो फिर सवाल उठना स्वाभाविक है कि आखिर हम आजाद किससे हुए हैं?

आज़ादी किसकी और सुरक्षा किसकी?

हम आजादी की बातें करते हैं, लेकिन क्या हर नागरिक इस आजादी को समान रूप से महसूस करता है? एक अपराधी खुलेआम घूम सकता है, लेकिन पीड़िता को समाज की नजरों से बचकर रहना पड़ता है। अपराध किसी और ने किया, लेकिन सवाल लड़की से किए जाते हैं। वह वहाँ क्यों गई थी? इतनी रात को बाहर क्यों थी? उसने ऐसे कपड़े क्यों पहने थे? अकेली क्यों थी? किसी से बात क्यों कर रही थी? कभी किसी ने अपराधी से पूछा कि उसने अपराध क्यों किया? कभी उससे पूछा गया कि उसने किसी की जिंदगी बर्बाद करने की हिम्मत कहाँ से पाई?

हमने अपनी बेटियों को हजारों पाबंदियाँ सिखा दीं, लेकिन अपने बेटों को सम्मान और सहमति का अर्थ सिखाने में अभी भी पीछे हैं। हम बेटियों से कहते हैं, संभलकर जाना, फोन करना, जल्दी घर आना, अकेले मत जाना। लेकिन क्या कभी उतनी गंभीरता से बेटों से कहा कि किसी की इच्छा के विरुद्ध उसे छूना भी अपराध है? किसी लड़की की ना का मतलब ना है? किसी महिला का शरीर उसकी अपनी इच्छा और उसकी अपनी सीमा है?

बेटियों को डरना नहीं, बेटों को जिम्मेदार होना सिखाइए।

हमारी बेटियों को यह सिखाने की जरूरत नहीं कि वे अपनी आजादी छोटी कर लें ताकि अपराधी आजाद रह सकें। जरूरत इस बात की है कि अपराधी को पता हो कि अपराध की कीमत उसे चुकानी पड़ेगी। और यहाँ एक और कड़वा सवाल है। हम हर घटना के बाद कुछ दिनों के लिए जागते हैं। सोशल मीडिया पर पोस्ट होती हैं। मोमबत्तियाँ जलती हैं। रैलियाँ निकलती हैं। नारे लगाए जाते हैं। टीवी चैनलों पर बहस होती है। लोग गुस्सा जाहिर करते हैं। फिर कुछ दिन बीतते हैं और सब शांत हो जाता है।

यहाँ गुनहगार बेख़ौफ़ घूमते हैं,
और बेगुनाह उम्रभर सज़ा काटते हैं।
इंसाफ़ के नाम पर कुछ दिन मोमबत्तियाँ जलती हैं,
फिर हवाएँ उन्हें बुझा देती हैं...
फिर वही अँधेरा लौट आता है,
वही ख़ामोशी, वही सवाल रह जाते हैं...
और हम फिर किसी अगली बेटी के लिए
मोमबत्तियाँ जलाने लगते हैं। 😇

क्या यही हमारा विरोध है? क्या यही हमारा न्याय है? क्या हम हर बार किसी नई घटना का इंतजार करते हैं ताकि फिर कुछ दिनों के लिए दुखी हो सकें?

जब कानून का डर खत्म हो जाए

कठोर कानून होना जरूरी है, लेकिन केवल कानून की किताब में कठोर सजा लिख देना काफी नहीं है। असली सवाल है कि क्या अपराधी को समय पर सजा मिलती है? क्या जांच निष्पक्ष और तेज होती है? क्या पीड़ित और उसके परिवार को सुरक्षा मिलती है? क्या गवाह बिना डर के अपना बयान दे सकता है? क्या सबूतों के साथ ईमानदारी से काम होता है? क्या अदालतों तक मामला इतनी तेजी से पहुँचता है कि पीड़िता को सालों तक अपने ही दर्द को दोहराना न पड़े?

कानून ऐसा होना चाहिए जिसमें न्याय कठोर भी हो और निश्चित भी। अपराधी को यह भरोसा नहीं होना चाहिए कि वह किसी कमी का फायदा उठाकर बच जाएगा।

कई बार हम सुनते हैं कि किसी आरोपी को पैरोल या कानूनी प्रक्रिया के तहत जेल से बाहर आने की अनुमति मिली। कानून में ऐसी व्यवस्थाओं के अपने नियम और परिस्थितियाँ होती हैं, लेकिन आम नागरिक के मन में तब एक बहुत स्वाभाविक सवाल उठता है कि जिस व्यक्ति के अपराध ने किसी परिवार की जिंदगी बदल दी, उसे बाहर देखकर उस परिवार पर क्या गुजरती होगी?

एक तरफ आरोपी को कानून के अधिकार मिलते हैं और दूसरी तरफ पीड़ित परिवार वर्षों तक डर, तनाव और इंतजार के बीच जीता है। हमें कानून के अधिकारों का सम्मान करते हुए यह भी सुनिश्चित करना होगा कि पीड़ित की सुरक्षा, गरिमा और मानसिक शांति कहीं पीछे न छूट जाए।

आज जरूरत इस बात की है कि न्याय व्यवस्था में ऐसा संतुलन हो जहाँ आरोपी के अधिकार भी सुरक्षित रहें, लेकिन पीड़ित को न्याय मिलने में उम्र न बीत जाए।

क्योंकि देर से मिला न्याय कई बार केवल फैसला होता है, इंसाफ़ नहीं। और जब अदालतों में ऐसे फैसले सामने आते हैं जो आम आदमी के मन को झकझोर देते हैं, तब सवाल और भी गहरे हो जाते हैं।

हाल ही में दिल्ली की एक अदालत में चार साल की बच्ची से बलात्कार के मामले में दोषी ठहराए गए एक युवक को मृत्युदंड नहीं दिया गया। अदालत ने इसे 'रेयरेस्ट ऑफ रेयर' की श्रेणी में नहीं माना और उसे उसके प्राकृतिक जीवन के शेष समय तक जेल में रखने की सजा दी। कानून में मृत्युदंड के लिए 'रेयरेस्ट ऑफ रेयर' का सिद्धांत है और अदालतों को अपराध की गंभीरता के साथ-साथ अन्य परिस्थितियों पर भी विचार करना होता है। यह कानूनी व्यवस्था अपनी जगह है, लेकिन एक आम नागरिक के मन में सवाल उठना भी स्वाभाविक है।

चार साल की एक बच्ची के साथ बलात्कार से अधिक भयावह क्या होना चाहिए कि कोई अपराध 'रेयरेस्ट ऑफ रेयर' कहलाए?

यह सवाल किसी न्यायाधीश पर व्यक्तिगत आरोप नहीं है। यह उस व्यवस्था से सवाल है, उस सोच से सवाल है और उस समाज से सवाल है जहाँ एक छोटी बच्ची भी सुरक्षित नहीं है।

हम कब ऐसा समाज बनाएँगे जहाँ किसी चार साल की बच्ची की सुरक्षा पर बहस करने की जरूरत ही न पड़े?

कठोर सजा का अर्थ केवल मृत्युदंड नहीं है। कठोर सजा का अर्थ यह भी है कि अपराधी को अपराध के बाद वर्षों तक कानून से बच निकलने का रास्ता न मिले। जांच मजबूत हो, मुकदमा समय पर चले, दोष सिद्ध होने पर सजा निश्चित हो और पीड़िता को न्याय के साथ सम्मान भी मिले।

जब जनप्रतिनिधियों की जुबान भी सवाल बन जाए

सबसे अधिक चिंता तब होती है जब समाज के जिम्मेदार पदों पर बैठे लोग महिलाओं के खिलाफ अपराध जैसे गंभीर विषय पर ऐसी भाषा का इस्तेमाल कर देते हैं जिसे सुनकर पूरा समाज शर्मिंदा हो जाए।

संसद में बैठे एक जनप्रतिनिधि द्वारा बलात्कार जैसे गंभीर अपराध पर यह कह देना कि जब बलात्कार होना ही है तो लेटकर उसका आनंद लो, केवल एक घटिया मजाक नहीं था। यह उस मानसिकता की भयावह झलक थी जो बलात्कार जैसी त्रासदी को भी मजाक में बदल सकती है। बाद में माफी माँग लेना अलग बात है, लेकिन सवाल यह है कि क्या एक माफी उस महिला के डर को मिटा सकती है जिसे ऐसा बयान सुनकर लगता है कि शायद उसके दर्द को समझने वाले ही कम हैं? अगर कानून बनाने वाले ही महिलाओं के सम्मान से जुड़े मुद्दों पर ऐसी भाषा बोलेंगे, तो आम समाज से हम संवेदनशीलता की उम्मीद कैसे करेंगे?

जनप्रतिनिधि केवल अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करते, वे समाज के लिए उदाहरण भी बनते हैं। उनकी भाषा में जिम्मेदारी होनी चाहिए। महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर बोलते समय शब्दों की गंभीरता समझनी चाहिए। क्योंकि जब कोई सामान्य व्यक्ति ऐसी बात करता है तो वह एक व्यक्ति की गलती होती है, लेकिन जब कोई जिम्मेदार पद पर बैठा व्यक्ति ऐसा बोलता है तो उसके शब्द समाज के सामने एक गलत संदेश छोड़ते हैं। हमें यह तय करना होगा कि राजनीति में किसी पद से बड़ा क्या है। पद या मर्यादा? सत्ता या संवेदनशीलता?

किसी महिला की अस्मिता किसी पार्टी, किसी विचारधारा या किसी राजनीतिक बहस का विषय नहीं हो सकती। वह इंसान है, नागरिक है और संविधान द्वारा समान अधिकार प्राप्त व्यक्ति है।

मैं मोमबत्ती जलाने के खिलाफ नहीं हूँ। मोमबत्ती कभी-कभी हमारी संवेदना की आवाज बनती है। वह यह बताती है कि हम किसी पीड़ित के साथ खड़े हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या सिर्फ मोमबत्ती जलाना काफी है? अगर एक हाथ में मोमबत्ती है और दूसरे हाथ से हम अगले दिन उस घटना को भूल जाते हैं, तो उस रोशनी का क्या अर्थ है? अगर रैली खत्म होते ही हमारा गुस्सा भी खत्म हो जाता है, तो अपराधी को डर किस बात का होगा?

अगर सोशल मीडिया की पोस्ट कुछ दिनों बाद गायब हो जाती है और फिर अगली घटना पर नई पोस्ट लिखी जाती है, तो बदलाव कहाँ है?

रैलियाँ हों, प्रदर्शन हों, आवाज उठे, लेकिन उसके साथ लगातार सामाजिक दबाव भी होना चाहिए। सरकार से सवाल पूछे जाने चाहिए। पुलिस से जवाब माँगा जाना चाहिए। जांच की गुणवत्ता पर नजर होनी चाहिए। न्यायालयों में लंबित मामलों पर गंभीरता से काम होना चाहिए। पीड़ित परिवारों को कानूनी और मानसिक सहायता मिलनी चाहिए।

सरकारें आती हैं और जाती हैं, राजनीतिक दल बदलते हैं, नेता बदलते हैं, लेकिन महिलाओं की सुरक्षा किसी एक सरकार का चुनावी मुद्दा नहीं होना चाहिए। यह पूरे देश का स्थायी मुद्दा होना चाहिए।

और हमें भी अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। हर घटना को केवल तब तक याद रखना जब तक वह ट्रेंड कर रही है, बदलाव नहीं है। बदलाव तब होगा जब हम किसी पीड़िता की कहानी को उसके कपड़ों, उसके चरित्र या उसके व्यवहार से नहीं जोड़ेंगे। बदलाव तब होगा जब हम अपराधी से सवाल करेंगे, पीड़िता से नहीं।

क्या यही हमारा रामराज्य है?

हम अक्सर रामराज्य की बात करते हैं। भगवान राम के नाम पर आदर्श शासन की कल्पना करते हैं। लेकिन अगर हम सच में रामराज्य की बात करते हैं, तो हमें यह भी समझना होगा कि रामराज्य केवल नारे का नाम नहीं है। वह न्याय, मर्यादा, कर्तव्य और सम्मान की कल्पना है।

हमारे इतिहास और कथाओं में स्त्री के सम्मान को इतना महत्वपूर्ण माना गया कि उसके अपमान पर युद्ध तक हुए। सीता माता के लिए भगवान राम ने पूरी लंका का सामना किया। महाभारत में द्रौपदी का अपमान केवल एक स्त्री का अपमान नहीं था, वह पूरे समाज की मर्यादा पर प्रश्न बन गया था।

तो फिर आज हम किस बात का इंतजार कर रहे हैं?
क्या हमारी बेटियाँ किसी महाकाव्य की पात्र नहीं हैं?
क्या उनके सम्मान की कोई कीमत नहीं?
क्या आज किसी बेटी के साथ अन्याय होने पर हमारा कर्तव्य केवल सोशल मीडिया पर दो लाइन लिख देना है?
हम अपने गौरवशाली इतिहास की बातें करते हैं, अपने राजाओं और महाराजाओं की वीरता की बातें करते हैं। कहते हैं कि हमारे यहाँ नारी सम्मान के लिए युद्ध हुए। फिर आज किसी बेटी के साथ अन्याय होने पर हमारी वीरता कहाँ चली जाती है?
क्यों हमारे हाथ सिर्फ मोमबत्ती उठाने तक सीमित रह जाते हैं?
क्यों हमारा गुस्सा कुछ दिनों बाद ठंडा पड़ जाता है?
क्यों हम अपराधी के बजाय पीड़िता की जिंदगी को जांचने लगते हैं?
अगर हम सच में अपनी संस्कृति पर गर्व करते हैं, तो उस संस्कृति का सबसे पहला अर्थ अपने घर की महिलाओं और बेटियों का सम्मान होना चाहिए।
बदलाव कानून से भी आएगा और घर से भी
सिर्फ सरकार को दोष देकर हम अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकते। अपराधी किसी दूसरे ग्रह से नहीं आते। वे इसी समाज से निकलते हैं। वे हमारे आसपास पलते हैं। इसलिए अपराध रोकने की शुरुआत घर से भी होनी चाहिए।
बचपन से लड़कों को यह समझाना होगा कि ताकत का मतलब किसी कमजोर को दबाना नहीं है। पुरुष होने का मतलब किसी महिला पर अधिकार जमाना नहीं है। प्रेम का मतलब अधिकार नहीं, सम्मान है। असहमति का मतलब अपमान नहीं है। और परिवारों को यह भी सिखाना होगा कि अगर किसी बच्चे के व्यवहार में गलत संकेत दिखाई दें तो उसे छिपाया नहीं जाए। कई बार परिवार अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए गलतियों को दबा देते हैं। लेकिन अपराध छिपाने से परिवार की इज्जत नहीं बचती, समाज का नुकसान बढ़ता है।
हमें यह भी समझना होगा कि हर पीड़िता को तुरंत बोल पाना संभव नहीं होता। डर, शर्म, धमकी, मानसिक आघात और समाज का दबाव किसी इंसान की आवाज छीन सकते हैं। इसलिए हमें ऐसी व्यवस्था चाहिए जहाँ शिकायत करना स्वयं एक दूसरी लड़ाई न बन जाए।

पुलिस में संवेदनशीलता हो। अस्पतालों में सम्मानजनक व्यवहार हो। कानूनी प्रक्रिया में पीड़िता को बार-बार अपमानित महसूस न कराया जाए। गवाहों को सुरक्षा मिले। बच्चों के मामलों में उनकी पहचान और गरिमा की रक्षा हो। अदालतों में मामलों की सुनवाई अनावश्यक रूप से वर्षों तक न खिंचे।

कठोर कानून जरूरी है, लेकिन उससे भी जरूरी है कानून का ईमानदारी से लागू होना। क्योंकि अगर कानून बहुत कठोर हो लेकिन लागू ही न हो, तो वह कागज पर लिखा डर है। और अगर कानून न्यायपूर्ण हो तथा निश्चित रूप से लागू हो, तो वही अपराधी के मन में वास्तविक डर पैदा करता है।

विश्वगुरु बनने से पहले खुद से सवाल

हम कहते हैं कि भारत विश्वगुरु बनेगा। हम कहते हैं कि भारत दुनिया को रास्ता दिखाएगा। हमें अपनी अर्थव्यवस्था पर गर्व है, अपनी सेना पर गर्व है, अपनी तकनीक पर गर्व है, अपनी संस्कृति पर गर्व है। लेकिन किसी देश की असली ताकत केवल उसकी ऊँची इमारतों, बड़ी अर्थव्यवस्था या शक्तिशाली सेना से तय नहीं होती। असली ताकत इस बात से भी तय होती है कि वहाँ एक आम नागरिक कानून पर कितना भरोसा करता है।

एक बच्ची का सुरक्षित होना भी विकास है।

एक महिला का बिना डर के घर लौटना भी विकास है।

एक पीड़िता का बिना सामाजिक कलंक के न्याय मांग पाना भी विकास है।

अपराधी का यह जानना कि वह बच नहीं पाएगा, भी विकास है। अगर हम अखंड भारत का सपना देखते हैं तो पहले वर्तमान भारत के भीतर न्याय और सुरक्षा की नींव मजबूत करनी होगी। नक्शे पर सीमाएँ जोड़ने से पहले लोगों के दिलों से डर हटाना होगा।

क्योंकि कैसा अखंड भारत, जहाँ आज का भारत ही अपनी बेटियों को सुरक्षा देने के लिए संघर्ष कर रहा हो?

कैसा विश्वगुरु, जहाँ किसी बेटी के साथ हुए अपराध के बाद पूरा समाज कुछ दिनों के लिए जागता हो और फिर सो जाता हो?

कैसा रामराज्य, जहाँ न्याय के लिए किसी परिवार को वर्षों इंतजार करना पड़े?

ये सवाल किसी एक व्यक्ति से नहीं हैं। ये सवाल हम सब से हैं।

आखिर कब रुकेगा ये सब?
कब हमारा कानून इतना प्रभावी होगा कि किसी अपराधी के मन में अपराध करने से पहले ही कानून का डर पैदा हो जाए?
कब किसी बेटी के माता-पिता को उसे बाहर भेजते समय हजार बार सोचने की जरूरत नहीं पड़ेगी?
कब किसी पीड़िता से यह नहीं पूछा जाएगा कि उसने क्या पहना था?
कब अपराधी के चरित्र पर सवाल उठेंगे और पीड़िता के चरित्र पर नहीं?
कब हमारी बेटियों को आत्मरक्षा के साथ-साथ यह भरोसा भी मिलेगा कि अगर उनके साथ कुछ गलत हुआ तो पूरा तंत्र उनके साथ खड़ा होगा?
कब हम किसी घटना को सिर्फ इसलिए याद नहीं रखेंगे क्योंकि वह सोशल मीडिया पर ट्रेंड कर रही है?
कब हमारी संवेदनाएँ इतनी मजबूत होंगी कि किसी कैमरे, किसी हैशटैग और किसी वायरल वीडियो की जरूरत न पड़े?
और सबसे बड़ा सवाल, कब हम बदलेंगे?
सरकार कानून बना सकती है। अदालत सजा दे सकती है। पुलिस जांच कर सकती है। लेकिन समाज की सोच बदलना भी उतना ही जरूरी है।
हमें अपनी बेटियों को यह नहीं कहना चाहिए कि दुनिया खराब है, इसलिए तुम खुद को सीमित करो। हमें दुनिया से कहना चाहिए कि हमारी बेटियाँ किसी से कम नहीं हैं और उनकी सुरक्षा तथा सम्मान पर कोई समझौता नहीं होगा।
हमें अपने बेटों को यह नहीं सिखाना चाहिए कि लड़की की जिम्मेदारी उसकी खुद की सुरक्षा है। हमें उन्हें सिखाना चाहिए कि किसी दूसरे की सीमा का सम्मान करना उनकी जिम्मेदारी है।
हमें पीड़ित परिवार को यह नहीं कहना चाहिए कि चुप रहो, बदनामी होगी। हमें कहना चाहिए कि आवाज उठाओ, हम तुम्हारे साथ हैं।
और हमें अपराधी के लिए यह संदेश देना होगा कि समाज तुम्हें बचाने नहीं आएगा।
हमने बहुत मोमबत्तियाँ जलाई हैं। अब जरूरत है कि उन मोमबत्तियों की रोशनी को कानून, व्यवस्था और समाज के बदलाव तक पहुँचाया जाए।

क्योंकि सिर्फ अंधेरे को कोसने से सुबह नहीं होती। सुबह के लिए रोशनी को बचाए रखना पड़ता है।

न्याय केवल फैसला सुनाए जाने का नाम नहीं है।

न्याय वह भरोसा है जो किसी बेटी को यह कहने की हिम्मत दे कि “मैं अकेली नहीं हूँ, मेरा देश मेरे साथ है।”

हमारे देश में किसी भी अपराधी को कठोर सजा नहीं मिलती, ऐसा कहना शायद हर मामले की कानूनी सच्चाई नहीं है, लेकिन आम नागरिक के मन में यह भावना जरूर पैदा हो गई है कि न्याय मिलने में बहुत देर होती है और अपराधी को कानून का डर उतना नहीं है जितना होना चाहिए। और सबसे दुखद बात यह है कि कई बार ऐसा लगता है जैसे सजा अपराधी को नहीं, बल्कि उस इंसान को मिलती है जिसके साथ अपराध हुआ है। वह अपने दर्द के साथ जीता है, समाज के सवालों का सामना करता है, अदालतों के चक्कर लगाता है और वर्षों तक उस घटना की याद से लड़ता है।

और हाँ, मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं। वे भी बस कुछ दिनों के लिए।

फिर मोमबत्तियाँ बुझ जाती हैं।

फिर रैलियाँ खत्म हो जाती हैं।

फिर खबरें बदल जाती हैं।

फिर हमारी व्यस्त जिंदगी वापस आ जाती है।

लेकिन उस बेटी की जिंदगी कहाँ वापस आती है?

उस माँ की नींद कहाँ वापस आती है?

उस परिवार का भरोसा कहाँ वापस आता है?

और अगर हम हर बार सिर्फ अगली घटना का इंतजार करेंगे, तो शायद सवाल यही रहेगा कि हम इंसाफ़ मांग रहे हैं या सिर्फ अगली मोमबत्ती जलाने की तैयारी कर रहे हैं?

क्योंकि जिस दिन इस देश में किसी बेटी के साथ अन्याय होने पर मोमबत्ती की जरूरत नहीं पड़ेगी, उस दिन शायद हम सच में कह पाएँगे कि भारत सुरक्षित है।

-लता गर्ग

जालौर, राजस्थान

अन्तरा शब्दशक्ति
प्रकाशन

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

सम्मान-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि

आ............ **लता गर्ग** ....जी

ने हिन्दी पखवाड़े के अवसर पर आयोजित "**एक लेख प्रतियोगिता**" में उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए **समसामयिक विषय पर अपने विचारों को** प्रभावी एवं सार्थक ढंग से अभिव्यक्त किया।
उनकी साहित्यिक **अभिव्यक्ति** एवं रचनात्मक सहभागिता की सराहना करते हुए **अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन** की ओर से यह **सम्मान-पत्र** सादर प्रदान किया जाता है।

आपकी सृजनशीलता एवं साहित्यिक यात्रा के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ।

हिन्दी विचारों को विस्तार देती है... समाज को जोड़ती है...

हिंदी
हमारी पहचान...
हमारी शक्ति...

प्रीति सुराना
समकित सुराना

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन एवं संस्था
डॉ. प्रीति समकित सुराना

शब्द से संवेदन तक... लेखन से परिवर्तन तक...